© April 2026| IJIRT | Volume 12 Issue 11 | ISSN: 2349-6002

उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं का अवदान: एक समग्र अध्ययन

डॉ. रमनदीप कौर
सहायक प्रोफेसर, प्रदर्शन कला विभाग, गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी, साबो, जिला बठिंडा, पंजाब

सार- संगीत भारत की सांस्कृतिक विरासत की एक अमूल्य धरोहर एवं विशिष्ट पहचान है, जिसके माध्यम से इस राष्ट्र के इतिहास, विविधता तथा सांस्कृतिक परिवेश का सजीव बोध होता है। भारतीय परंपरा में संगीत केवल शिक्षण या प्रशिक्षण का माध्यम नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना और उपासना का एक पवित्र साधन भी है, जिसमें साधक स्वर और लय के माध्यम से स्वयं को परम अनुभूति के साथ एकाकार कर देता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा, विशेषताओं एवं विविधता का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसकी दो प्रमुख पद्धतियाँ—हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत तथा कर्नाटक संगीत—दोनों में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत में महिलाओं की सक्रिय उपस्थिति रही है, जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखंडों में सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ विकसित होती हुई दृष्टिगत होती है। आधुनिक युग तक आते-आते संगीत के क्षेत्र में महिलाओं की सीमित उपस्थिति को सशक्त बनाने में पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर तथा विष्णु नारायण भातखंडे जैसे महान संगीताचार्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप महिलाओं को संगीत के विविध क्षेत्रों में उन्नति के नए अवसर प्राप्त हुए। शास्त्रीय संगीत की दोनों प्रमुख पद्धतियों की मुख्य विधाओं—गायन, वादन एवं नृत्य—में उत्तर एवं दक्षिण भारतीय महिला कलाकारों ने अपने संपूर्ण जीवन को संगीत साधना के प्रति समर्पित कर उल्लेखनीय योगदान दिया है। यद्यपि दोनों परंपराएँ अपनी-अपनी क्षेत्रीय विविधताओं एवं विशेषताओं को अभिव्यक्त करती हैं, तथापि इनका मूल स्वर भारतीय संस्कृति की समृद्धि और आध्यात्मिकता को ही प्रतिबिंबित करता है।

निःसंदेह, इन महिला कलाकारों का योगदान न केवल संगीत कला के संवर्धन में सहायक रहा है, बल्कि उन्होंने भक्ति, साधना एवं समर्पण के माध्यम से भारतीय संगीत को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ने इन महान विभूतियों के माध्यम से संगीत जगत को अपनी अनुकम्पा से आलोकित किया है।

कुंजी शब्द: संगीत, नारी, भारतीय शास्त्रीय संगीत, पद्धतियाँ, विशेषताएँ, महिला कलाकार, योगदान, गायन, वादन, नृत्य

भारत की धरती पर संगीत की धारा प्राचीन काल से निरंतर प्रवाहित होती आ रही है। भारतीय संगीत विभिन्न ऐतिहासिक कालखंडों के परिवर्तनों का साक्षी रहा है। वैदिक संगीत से आरम्भ होकर मध्यकालीन और तत्पश्चात आधुनिक युग तक यह अनेक उतार-चढ़ावों एवं चुनौतियों से गुजरते हुए निरंतर विकसित होता रहा है। प्रत्येक युग में महान संगीत विभूतियों ने अपने परिश्रम, योग्यता और योगदान के माध्यम से संगीत के विविध स्वरूपों को न केवल संरक्षित किया, बल्कि उन्हें समृद्ध एवं विकसित भी किया।

यदि योगदान और कौशल की दृष्टि से देखा जाए, तो पुरुष कलाकारों के समान ही महिला कलाकारों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय रही है। वैदिक युग में संगीत के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी। पुरुषों की भाँति उनका भी उपनयन संस्कार होता था और वे गायन, वादन एवं नृत्य में निपुण थीं। उस समय वीणा वादन का विशेष प्रचलन था, जिसे प्रायः महिलाएँ ही बजाती थीं। साथ ही, उन्हें कंठ-संगीत में भी प्रवीणता प्राप्त थी और वे सार्वजनिक आयोजनों में नृत्य एवं संगीत प्रस्तुत करने में संकोच नहीं करती थीं। किन्तु वैदिक काल से मध्यकाल की यात्रा के दौरान महिलाओं की सार्वजनिक संगीत-गतिविधियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लग गए। सामाजिक कुरीतियों—जैसे पर्दा प्रथा, सती प्रथा एवं बाल विवाह—ने नारी के जीवन और उसकी सांगीतिक शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। यह स्थिति आधुनिक काल तक किसी न किसी रूप में बनी रही। ऐसे समय में संगीत और नारी दोनों के पुनरुत्थान के लिए दो महान संगीताचार्यों—पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर और विष्णु नारायण भातखंडे—ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इस दिशा में विशेष प्रयास किए।

इन प्रयासों के फलस्वरूप सभ्रांत परिवारों की महिलाओं ने पुनः संगीत शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया तथा अनेक महिलाओं ने घराना परंपरा के अंतर्गत विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया। परिणामस्वरूप शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में अनेक प्रतिष्ठित महिला कलाकारों का उदय हुआ।

मूलतः भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख शाखाएँ—हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत और कर्नाटक संगीत—हमारे समक्ष आती हैं। यद्यपि दोनों की मूल जड़ें वैदिक परंपरा में निहित हैं, तथापि उनके स्वरूप में भिन्नताएँ भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। हिन्दुस्तानी संगीत पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव देखा जाता है, जबकि कर्नाटक संगीत का विकास मुख्यतः भक्ति आंदोलन के दौरान हुआ और यह पूर्णतः स्वदेशी स्वरूप लिए हुए है।

हिन्दुस्तानी संगीत की विशेषता इसकी लचीली संरचना एवं राग-विस्तार की स्वतंत्रता है, जिसमें सितार, सारंगी, तबला और हारमोनियम जैसे वाद्यों का प्रमुख स्थान है तथा मींड और तानों की स्वाभाविक प्रवाहशीलता पर बल दिया जाता है। इसके विपरीत, कर्नाटक संगीत अधिक संरचित एवं अनुशासित है, जिसमें परंपरागत रचनाओं का विधिवत पालन किया जाता है तथा गमकों का व्यापक प्रयोग इसकी विशेषता है। इसमें वीणा, वायलिन, मृदंगम और घटम जैसे वाद्यों का विशेष महत्व है।

उपर्युक्त दोनों शैलियों में कलाकारों की एक विस्तृत सूची मिलती है, जिसमें महिला कलाकारों की उपस्थिति उनके समर्पण, संघर्ष, कठोर परिश्रम और अटूट इच्छाशक्ति को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। संगीत चाहे किसी भी शैली, प्रदेश या देश का हो, उसमें पारंगत होने का मार्ग सदैव चुनौतीपूर्ण होता है। महिला कलाकारों के लिए यह मार्ग और भी अधिक कठिन रहा है, किंतु उनकी उपलब्धियाँ इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि कठिनाइयों का सामना कर उन पर विजय प्राप्त करना नारी के स्वभाव का अभिन्न अंग है।

उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत की तीनों प्रमुख विधाओं—गायन, वादन और नृत्य—में महिलाओं ने अपना महत्वपूर्ण एवं अमूल्य योगदान दिया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में मुख्यतः घरानों की परंपरा अत्यंत महत्वपूर्ण एवं व्यवस्थित रूप से विकसित हुई है, जिसमें शास्त्रीय गायिकाओं की भूमिका विशेष रूप से प्रमुख एवं प्रभावशाली रही है। घराना परंपरा न केवल संगीत की विशिष्ट शैली को संरक्षित करती है, बल्कि उसे पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित भी करती है।

ग्वालियर घराना भारतीय शास्त्रीय संगीत का सबसे प्राचीन घराना माना जाता है तथा इसे अन्य अनेक घरानों का मूल स्रोत भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख विशेषताओं में सरल एवं स्पष्ट तानों का प्रयोग, स्वरों की बुलंदी, राग एवं ताल पर विशेष बल, सादगी तथा बंदिशों का स्पष्ट उच्चारण सम्मिलित हैं। इस घराने से संबंधित अनेक प्रतिष्ठित महिला कलाकारों ने संगीत जगत को समृद्ध किया है, जिनमें सुशीला मराठे, कौशल्या मंजनरेकर, विजनबाला घोष दस्तीदार, सुलभा मोहिले, कमल केलकर, कालिंदी केलकर, सुभद्रा चौधरी, वसुंधरा कोमकली, वीणा सहस्रबुद्धे, शोभा गुर्टू तथा मीता पंडित जैसी विदुषी गायिकाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार आगरा घराना भी अपनी विशिष्ट गायकी के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें अनेक महिला कलाकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें मल्लिकाजान, जोहराबाई, बबली बाई, फरहत जान, ज्योत्सना भोले, कृष्णा उदयावर, श्यामला मजगांवकर, पद्मजा पंडित, माणिक वर्मा, मालती पांडे, अंजनीबाई जांबोलेकर, लीलावंती शिरगांवकर, चंपाबाई कालेकर, ताराबाई शिरोडकर, सरला भिड़े, अर्चना कन्हेरे, सुमति मुताटकर, मीनाक्षी शिरोडकर, मीनाक्षी मुडबिद्री, शुभ्रा गुहा, पूर्णिमा सेन तथा दीपाली नाग आदि प्रमुख नाम उल्लेखनीय हैं।

किराना घराने की गायकी अपनी विशिष्ट स्वर-साधना एवं सूक्ष्म उच्चारण शैली के लिए प्रसिद्ध है। इसमें स्वरों की शुद्धता एवं उनके विस्तार पर विशेष बल दिया जाता है, जबकि ताल और लय की जटिलताओं की अपेक्षा स्वर-सौंदर्य को अधिक महत्व दिया जाता है। इस घराने में बंदिश का विस्तार सीमित शब्दों के माध्यम से अत्यंत सूक्ष्मता एवं गहराई के साथ किया जाता है। स्थायी और अंतरे की परंपरागत संरचना से परे जाकर स्वर-विस्तार में स्वतंत्रता भी इसकी एक प्रमुख विशेषता है। अन्य घरानों की तुलना में यह शैली ताल-प्रधान न होकर स्वर-प्रधान मानी जाती है, जिसमें प्रत्येक स्वर को अत्यंत निपुणता एवं विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।[1]

इन घरानों के अंतर्गत अनेक प्रतिष्ठित महिला गायिकाओं के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनमें हीराबाई बड़ोदेकर, रोशनआरा बेगम, गंगूबाई हंगल, सरस्वती बाई राणे, मालती पांडे, प्रभा अत्रे, किशोरी आमोनकर, पूरवी पारेख, अलका जोगलेकर, आशा पारसनीस तथा सुजाता गुरव-कम्मर आदि प्रमुख हैं।

अत्रौली (जयपुर-अत्रौली) घराने में भी अनेक विदुषी गायिकाओं ने अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। इनमें केसरबाई केरकर, मोगूबाई कुर्डीकर, मैनाकाबाई

शिरोडकर, तानिबाई, लीलाबाई शिरगांवकर, किशोरी आमोनकर, अश्विनी देशपांडे तथा पद्मा तलवलकर जैसी प्रमुख विभूतियाँ शामिल हैं।

बनारस घराने की गायकी की मुख्य विशेषता खयाल गायन में बोल-तानों का विशिष्ट प्रयोग तथा ठुमरी के पूरब अंग एवं टप्पा शैली की प्रधानता है। इस घराने को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली प्रमुख महिला कलाकारों में बड़ी मोतीबाई, हुस्नाबाई, जद्दनबाई, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, रसूलन बाई, आराधना दे, बेला घोष, वीणा पाणि मिश्रा तथा रेखा सेन आदि उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त पटियाला घराने की मीरा बनर्जी, संध्या मुखर्जी, कावेरी कर, बेला चौधरी तथा कौशिकी चक्रवर्ती; दिल्ली घराने की सिमरन बेल्लूर; तथा मेवाती घराने की डॉ. भारती पिल्लै, नीरजा राठौड़, सुलक्षणा पंडित एवं निराली कार्तिक आदि भी विशेष रूप से उल्लेखनीय नाम हैं, जिन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के विपरीत कर्नाटक अथवा दक्षिण भारतीय संगीत में घराना परंपरा का स्वरूप उसी प्रकार नहीं मिलता। इसकी पृष्ठभूमि का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत के प्राचीन द्रविड़ संगीत का एक प्रमुख स्रोत ईस्वी द्वितीय शताब्दी का चेरा वंशीय राजकुमार इलंगो अडिगल द्वारा रचित *"शिलप्पदिकारम्"* है। इस महान ग्रंथ में उस समय के संगीत और नृत्य का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन तमिल समाज में पुरुष और महिलाएँ दोनों ही पेशेवर संगीतकार के रूप में सक्रिय थे।

उस समय पुरुष कलाकारों को "पाणर" कहा जाता था, जबकि महिला कलाकारों को "विरलि" अथवा "पाडिनी" के नाम से संबोधित किया जाता था, जो उस युग में संगीत के क्षेत्र में महिलाओं की सक्रिय एवं सम्मानित भूमिका को स्पष्ट रूप से दर्शाता है।[2]

मंदिरों में नृत्य एवं गायन के समन्वय से देवदासी परंपरा का उद्भव हुआ। देवदासियाँ कठोर एवं सुव्यवस्थित प्रशिक्षण प्राप्त कर संगीत एवं नृत्य में उच्च कोटि की निपुणता अर्जित करती थीं। प्रारंभिक अवस्था में समाज में उनका सम्मानित स्थान था, किंतु समय के साथ जब यह परंपरा मंदिरों से निकलकर दरबारों तक पहुँची, तो सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाने लगा। परिणामस्वरूप, सभ्रांत परिवारों की महिलाओं ने संगीत से दूरी बना ली।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सामाजिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इसके फलस्वरूप महिलाओं का पुनः संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश हुआ और उन्होंने अपने कौशल एवं प्रतिभा के आधार पर प्रतिष्ठित स्थान अर्जित किया।

कर्नाटक संगीत के क्षेत्र में एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी का नाम विशेष गौरव के साथ लिया जाता है। उन्हें *"संगीत कलानिधि"*, *"रैमॉन मैग्सेसे पुरस्कार"* तथा *"भारत रत्न"* जैसे सर्वोच्च सम्मानों से अलंकृत किया गया, जो उनकी अद्वितीय प्रतिभा और योगदान का प्रमाण है।

उनके अतिरिक्त डी. के. पट्टम्माल तथा एम. एल. वसंतकुमारी जैसी महान गायिकाओं ने भी कर्नाटक संगीत में महत्वपूर्ण योगदान दिया और सुब्बुलक्ष्मी के समकालीन रहते हुए अपने विशिष्ट शैलीगत गुणों के माध्यम से संगीत जगत में अपनी अलग पहचान स्थापित की। यद्यपि इन सभी की गायन शैली एवं विशेषताएँ भिन्न-भिन्न थीं, तथापि इनका योगदान समान रूप से महत्वपूर्ण और प्रेरणास्पद रहा है।

डी. के. पट्टम्माल ने अपनी कठोर शास्त्रीयता, शुद्ध उच्चारण तथा संस्कृत बंदिशों की उत्कृष्ट प्रस्तुति और उनके व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए विशेष सम्मान प्राप्त किया। वहीं, एम. एल. वसंतकुमारी ने अपने गुरु जी. एन. बालसुब्रह्मण्यम की संगीत-शैली पर आधारित गायन में अद्वितीय दक्षता प्राप्त की, जिसमें द्रुत विस्तार और स्वर-चातुर्य का विशेष महत्व है। उन्होंने इस शैली की प्रभावपूर्ण प्रस्तुति के माध्यम से कर्नाटक संगीत में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की।[3]

इनके अतिरिक्त अरुणा साईराम, एम. ए. शीला तथा सुधा रघुनाथन भी अपने-अपने क्षेत्र में सशक्त एवं प्रतिष्ठित हस्ताक्षर के रूप में स्थापित हैं, जिन्होंने कर्नाटक संगीत की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की वादन परंपरा में तंत्री वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। इनकी उपस्थिति गायन एवं नृत्य दोनों में भावों की अभिव्यक्ति को और अधिक सौंदर्यपूर्ण एवं प्रभावी बनाती है। तंत्री वाद्यों की प्रमुख विशेषताएँ—रूपात्मक सौंदर्य, नादात्मक माधुर्य तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की व्यापक क्षमता—उन्हें विशिष्ट बनाती हैं। इन्हीं गुणों के कारण इन वाद्यों की लोकप्रियता सर्वस्वीकृत एवं निर्विवाद है।[4]

प्रमुख तंत्री वाद्यों में वीणा, सितार, सरोद, वायलिन तथा सारंगी आदि का विशेष स्थान है। यदि उत्तर भारत की तंत्री वादकाओं पर दृष्टि डाली जाए, तो सितार और सुरबहार के क्षेत्र में अन्नपूर्णा देवी का नाम अत्यंत श्रद्धा और आदर के साथ लिया जाता है।

पद्मविभूषण से अलंकृत महान संगीताचार्य उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की सुपुत्री अन्नपूर्णा देवी के लिए संगीत केवल एक कला नहीं, बल्कि साधना और आध्यात्मिक साध्य का माध्यम भी था। उन्होंने अपने अद्वितीय कौशल, गहन साधना और विलक्षण प्रतिभा के बल पर भारतीय शास्त्रीय संगीत में एक विशिष्ट एवं सम्माननीय स्थान प्राप्त किया।

"Her depth of knowledge and skill as a performer, which she beautifully imbibed from her illustrious father, Baba Allauddin Khan was truly of a legendary stature. She was a pioneer woman instrumentalist and anyone having heard her incredible surbahar recordings will be astounded not only by the ragadaari, but her virtuosity on such a difficult instrument. With such phenomenal talent and musical mastery, it requires great restraint and courage of conviction to stay away from the limelight and yet devote one's entire life to the 'Sadhna of Music'"[5] सितार वादन के क्षेत्र में अन्य उल्लेखनीय महिला वादकाओं में कल्याणी राय, मीता नाग, अनुपमा भगवत, अनुष्का शंकर, जया विश्वास तथा मंजू मेहता आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। इन कलाकारों ने अपने उत्कृष्ट कौशल, साधना और समर्पण के माध्यम से सितार वादन को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया है।

इसके अतिरिक्त, सरोद वादन के क्षेत्र में शरणरानी बकलीवाल तथा जरीन दारूवाला जैसी प्रतिष्ठित महिला वादकाओं का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सराहनीय रहा है, जिन्होंने इस वाद्य की परंपरा को समृद्ध एवं व्यापक बनाया है।

"Sharan Rani was the first and foremost woman instrumentalist of India and among the greatest musicians of the 20th century called the 'Cultural Ambassador of India' by Pt. Jawaharlal Nehru, she is also credited for playing a fundamental role in introducing and popularising Indian classical music in numerous countries ever since in 1950s. She broke the centuries old glass ceiling to take up the sarod, widely dubbed a man's instrument due to the posture required in playing it."[6]

सारंगी वादन के क्षेत्र में महिला वादकों में अरुणा नारायण तथा गौरी बनर्जी सती के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने इस जटिल एवं भावप्रधान वाद्य को साधकर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है।

दक्षिण भारत की तंत्री वादकाओं में वीणा धनम्माल का स्थान अत्यंत उच्च एवं विशिष्ट रहा है। उनकी वादन-कुशलता इतनी उत्कृष्ट थी कि वीणा वादन की एक विशिष्ट शैली ही उनके नाम से जुड़ गई। उनका वादन न केवल कर्नाटक संगीत की परंपरा का अभिन्न अंग बना, बल्कि उसमें निहित लयात्मकता एवं सूक्ष्म अभिव्यक्ति की परंपरा को भी सुदृढ़ किया। उनकी शैली की प्रमुख विशेषता लय पर विशेष बल देना तथा भावों की गहन अभिव्यक्ति रही है।

अन्य प्रमुख वीणा वादकाओं में निर्मला राजशेखर, जयंती कुमारेश तथा ज्योति हेगड़े के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें ज्योति हेगड़े को एकमात्र प्रमुख महिला रुद्र वीणा वादक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने रुद्र वीणा की शिक्षा उस्ताद असद अली खाँ से प्राप्त की। प्रारंभ में उनके गुरु ने यह मानते हुए उन्हें शिक्षा देने से इंकार कर दिया था कि रुद्र वीणा महिलाओं के लिए उपयुक्त वाद्य नहीं है, किन्तु उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति, समर्पण और निरंतर प्रयास के फलस्वरूप अंततः उन्हें गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। कठोर साधना और गुरु के आशीर्वाद से उन्होंने सभी चुनौतियों को पार कर इस वाद्य में विशिष्ट स्थान अर्जित किया।

वायलिन के क्षेत्र में पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित अवसरला कन्याकुमारी दक्षिण भारत की अग्रणी वायलिन वादक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्हें उनकी उत्कृष्ट साधना और योगदान के लिए *"संगीत कलानिधि"* सम्मान से भी अलंकृत किया गया है। अक्करई एस. सुब्बलक्ष्मी एक कुशल वायलिन वादक होने के साथ-साथ गायिका भी हैं। उन्होंने अपने पिता अक्करई एस. स्वामीनाथन से वायलिन की शिक्षा प्राप्त की। इनके अतिरिक्त एच. एस. स्मिता तथा डॉ. गायत्री शंकरन भी इस क्षेत्र की उल्लेखनीय वादकाओं में सम्मिलित हैं।

गायन और वादन के साथ नृत्य भी संगीत का अभिन्न अंग है। शास्त्रीय नृत्य की परंपरा में उत्तर भारत में कथक नृत्य का विशेष स्थान है। कथक नृत्य उत्तर भारत की प्रमुख देन है और मंदिरों से जुड़ा होने के कारण इसका स्वरूप मूलतः धार्मिक एवं आध्यात्मिक रहा है। 'कथक' शब्द 'कथा' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—कथा कहने वाला। इस दृष्टि से कथक नृत्य कथा-वाचन की परंपरा का ही विकसित रूप है।

कथक नृत्य को एक विशाल एवं पवित्र गंगा नदी के समान माना जा सकता है, जिसमें अनेक छोटी-छोटी धाराएँ आकर मिलती हैं और उसकी प्रवाहमानता को समृद्ध करती हैं।

इसी प्रकार, कथक में विविध तत्वों का समन्वय दिखाई देता है। यह शास्त्रीय नृत्य की उन विशिष्ट शैलियों में से एक है, जिसमें नृत्य (अभिनय) और नृत्त (शुद्ध नृत्य) दोनों का अद्वितीय एवं संतुलित समन्वय देखने को मिलता है, जो इसे अन्य नृत्य शैलियों से विशिष्ट बनाता है।[7]

सितारा देवी, दमयंती जोशी, अदिति मंगलदास, कुमुदिनी लाखिया, गौरी जोग तथा मल्लिका साराभाई जैसी प्रतिष्ठित नृत्यांगनाओं ने इस शास्त्रीय नृत्य शैली को न केवल आत्मसात किया, बल्कि इसे अपने जीवन का एकमात्र ध्येय बनाकर इसके संवर्धन और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वहीं दक्षिण भारत की प्रमुख नृत्य शैलियों में भरतनाट्यम, कुचिपुड़ी, कथकली तथा मोहिनीअट्टम का विशेष स्थान है। भरतनाट्यम का उद्भव तमिलनाडु में माना जाता है तथा इसके विकास में तंजावुर के राजाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल में इस नृत्य शैली को *"दासी अट्टम"* (अर्थात देवदासियों का नृत्य) तथा *"सदिर"* या *"नाच"* के नाम से भी जाना जाता था। कुछ विद्वान इसे तंजावुर नृत्य भी कहते हैं, किन्तु वर्तमान समय में यह सर्वमान्य रूप से *भरतनाट्यम* के नाम से ही प्रसिद्ध है।

'भरतनाट्यम' शब्द की व्युत्पत्ति इसके मूल तत्वों को स्पष्ट करती है—'भ' से भाव, 'र' से राग और 'त' से ताल का बोध होता है। इस प्रकार, वह नृत्य जिसमें भाव, राग और ताल—इन तीनों का समन्वित एवं संतुलित समावेश हो, उसे भरतनाट्यम कहा जाता है। यह नृत्य शैली न केवल तकनीकी कौशल का परिचायक है, बल्कि भावाभिव्यक्ति, संगीतात्मकता और लयात्मकता का अद्वितीय संगम भी प्रस्तुत करती है।[8]

इस विधा की नृत्यांगनाओं में श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुंडेल का नाम अत्यंत अग्रणी एवं सम्माननीय है। यदि उन्हें स्वयं में एक संस्था कहा जाए, तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे केवल एक नृत्यांगना ही नहीं थीं, बल्कि उन्होंने इस लुप्तप्राय कला को पुनर्जीवित करने का महान कार्य किया। उस समय जब नृत्य और नृत्यांगनाओं को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था, तब रुक्मिणी देवी अरुंडेल ने साहसपूर्वक आगे आकर इस कला के संरक्षण और पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया। उनके अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप भरतनाट्यम को पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और यह कला पुनः समाज में सम्मानित स्थान अर्जित कर सकी। "Arundale's work was integral to the revival of bharatanatyam and to the elevation in status of both the tradition and its practitioners. The interplay of elements of stagecraft, lighting, costumes, music and choreography, moreover transformed the devotional experience into an art form that could be appreciated on a global platform."[9]

इसके अतिरिक्त पद्मा सुब्रह्मण्यम तथा श्रीमती गायत्री वेंकटारमण भी इस क्षेत्र की प्रमुख नृत्यांगनाओं में सम्मिलित हैं, जिन्होंने अपनी विशिष्ट शैली और उत्कृष्ट प्रस्तुति के माध्यम से भारतीय शास्त्रीय नृत्य को समृद्ध किया है।

कुचिपुड़ी आंध्र प्रदेश का एक प्रमुख शास्त्रीय नृत्य है। यह एक नृत्य-नाटिका के रूप में विकसित शैली है, जिसके विषय मुख्यतः धार्मिक एवं पौराणिक होते हैं। इसमें नृत्त, नृत्य तथा नाट्य—इन तीनों तत्वों का समन्वित एवं सजीव समावेश देखने को मिलता है। परंपरागत रूप से यह नृत्य केवल पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, किंतु समय के साथ महिलाओं ने भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। कुचिपुड़ी की प्रमुख नृत्यांगनाओं में यामिनी कृष्णमूर्ति, यामिनी रेड्डी, शोभा नायडू तथा राजा-राधा रेड्डी जैसी विभूतियों ने इस शैली को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

कथकली नृत्य केरल से संबंधित एक विशिष्ट नाट्यप्रधान नृत्य शैली है, जिसमें कथा की अभिव्यक्ति हेतु संगीत, अभिनय और नृत्य का सशक्त समन्वय होता है। इसकी प्रमुख विशेषता कलाकारों के मुखाभिनय, नेत्राभिनय तथा हस्तमुद्राओं के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति है। साथ ही, इसकी रंग-बिरंगी वेशभूषा और श्रृंगार प्रत्येक पात्र के विशिष्ट चरित्र को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते हैं। यद्यपि यह परंपरागत रूप से पुरुष-प्रधान नृत्य रहा है, तथापि 1970 के दशक के पश्चात महिलाओं ने भी इसमें सक्रिय भागीदारी प्रारंभ की। इस क्षेत्र में चावरा पार्वतीकुट्टी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मोहिनीअट्टम भी केरल की एक महत्वपूर्ण शास्त्रीय नृत्य शैली है, जिसे मुख्यतः महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली की प्रमुख नृत्यांगनाओं में कलामंडलम कल्याणीकुट्टी अम्मा, जिन्हें मोहिनीअट्टम की पुनर्संस्थापक माना जाता है, के अतिरिक्त सुनंदा नायर, पल्लवी कृष्णन, गोपिका वर्मा तथा विजयलक्ष्मी आदि प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

अतः उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविध विधाओं में महिलाओं का योगदान न केवल उनकी कला के प्रति गहन आस्था और समर्पण को अभिव्यक्त करता है, बल्कि उनके द्वारा किए गए संघर्ष, साधना और निरंतर प्रयासों की प्रेरणादायक गाथा भी प्रस्तुत करता है। यह स्पष्ट है कि महिलाओं का योगदान केवल संगीत-शिक्षा प्राप्त करने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने इस परंपरा के

संरक्षण, संवर्धन एवं सतत विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत की समृद्ध परंपरा में महिलाओं का योगदान अत्यंत व्यापक, बहुआयामी और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है।

प्राचीन वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, महिलाओं ने संगीत के क्षेत्र में अपनी निरंतर उपस्थिति बनाए रखी है। यद्यपि मध्यकाल में सामाजिक कुरीतियों एवं प्रतिबंधों के कारण उनके सांगीतिक विकास में अवरोध उत्पन्न हुए, तथापि आधुनिक काल में पुनः उन्हें अवसर प्राप्त हुए और उन्होंने अपने अद्वितीय कौशल, साधना तथा समर्पण के बल पर संगीत के विभिन्न क्षेत्रों—गायन, वादन एवं नृत्य—में उत्कृष्ट उपलब्धियाँ अर्जित कीं।

हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक, दोनों ही शास्त्रीय परंपराओं में महिला कलाकारों ने न केवल परंपराओं का संरक्षण किया, बल्कि उन्हें नवीन आयाम भी प्रदान किए। घराना परंपरा, तंत्री वादन, कंठ संगीत तथा शास्त्रीय नृत्य की विविध शैलियों में उनकी सक्रिय भागीदारी यह सिद्ध करती है कि वे केवल परंपरा की वाहक ही नहीं, बल्कि उसके विकास की प्रेरक शक्ति भी रही हैं।

विशेष रूप से यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक चुनौतियों के बावजूद महिला कलाकारों ने अपने दृढ़ संकल्प, निरंतर साधना एवं अदम्य इच्छाशक्ति के माध्यम से न केवल स्वयं को स्थापित किया, बल्कि भारतीय शास्त्रीय संगीत को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गौरव प्रदान किया।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा में महिलाओं का योगदान केवल सहायक या सीमित नहीं, बल्कि केंद्रीय, सृजनात्मक और प्रेरणास्पद रहा है। उनके बिना भारतीय संगीत की परिपूर्णता की कल्पना करना संभव नहीं है। भविष्य में भी संगीत के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता एवं सशक्त भूमिका इस परंपरा को और अधिक समृद्ध एवं सुदृढ़ बनाएगी।

संदर्भ सूची

[1] एस. मिश्रा, *हिन्दुस्तानी संगीत की घराना परंपरा*, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2014, पृ. 77।

[2] *संगीत पत्रिका (महिला- संगीत अंक)*, जनवरी–फरवरी, 1986, पृ. 49। *वही*, पृ. 53।

[3] पी. महाडिक, *भारतीय संगीत के तंत्रीवाद्य*, मध्य प्रदेश: हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1994, पृ. 02।

[4] अंजना राजन, "अन्नपूर्णा देवी: ए योगी हू लिव्ड इन द मार्केटप्लेस अनटच्ड," *द हिन्दू*, 15 अक्टूबर 2018। [ऑनलाइन] उपलब्ध: https://www.thehindu.com

[5] पल्लवी सिंह, "शरण रानी बकलीवाल एंड हर डिवोशन टू म्यूज़िक," *द इकोनॉमिक टाइम्स*, 2 जनवरी 2011। [ऑनलाइन] उपलब्ध: https://m.economictimes.com

[6] वी. नागर, *ठुमरी एवं कथक*, दिल्ली: बी.आर. रिदम्स, 2020, पृ. 27।

[7] पी. दाधीच, *भरतनाट्यम शिक्षा*, इंदौर: बिंदु प्रकाशन, 2017, पृ. 01।

[8] "रुक्मिणी देवी अरुंडेल," *ब्रिटानिका विश्वकोश*। [ऑनलाइन] उपलब्ध: https://www.britannica.com